

## SYLLABUS

### B.Com II SEM (All)

#### Subject - ENGLISH LANGUAGE AND INDIAN CULTURE

UNIT - I	<p><b>नैतिक मूल्य</b> – 1. अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन – सर्वपल्ली राधाकृष्णन 2. अप्प दीपो भव – स्वामी श्रद्धानंद, 3. बुद्ध की करुणा – डॉ. सद्धा तिस्स</p>
UNIT - II	<p><b>हिन्दी भाषा</b> – 1. भारत वन्दना (कविता) – सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', 2. पुष्प की अभिलाषा (कविता) – माखनलाल चतुर्वेदी 3. अकाल और उसके बाद (कविता) – नागार्जुन, 4. निर्माल्य (ललित निबंध) – विद्यानिवास मिश्र, 5. मानक हिन्दी का स्वरूप (संकलित)</p>
UNIT - III	<p><b>हिन्दी भाषा</b> – 1. अफसर (व्यंग्य) – शरद जोशी, 2. भोलाराम का जीवन (व्यंग्य) – हरिशंकर परसाई, 3. भारत का सामासिक व्यक्तित्व (चिंतनपरक) – जवाहरलाल नेहरू, 4. भारत देश और उसके निवासी (विश्लेषणपरक) – रामधारी सिंह दिनकर, 5. पल्लवन और संक्षेपण (संकलित)</p>
UNIT - IV	<p><b>English Language</b> 1. William Wordsworth : The Solitary Reaper 2. A Song of Kabir- Translated by Tagore 3. Khushwant Singh : The Portrait of a Lady 4. Mahatma Gandhi : Satyagraha</p>
UNIT - V	<p><b>English Language</b> Comprehension, Unseen Passages, Report- writing, Composition, Short Essay, Paragraph Writing (Based on the expansion of an idea) <b>Basic language skills</b> : vocabulary, synonyms, antonyms, word formation, prefixes, suffixes, confusing words, similar words with different meanings, proverbs, situational conversations like conversation at the post office, bank, market place, railway station, college etc. <b>Basic language skills</b> : Grammar and Usage, Tenses, Prepositions, determiners, countable/ uncountable nouns, verbs, articles and adverbs</p>

UNIT-I

नैतिक मूल्य

1. अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन – सर्वपल्ली राधाकृष्णन

सारांश –

डॉ. राधाकृष्णन भारतीय परम्परा के अनुसार अंतर्ज्ञान को विशिष्ट मानते हैं उनका मानना है कि हमारे नैतिक जीवन में भी उच्चतम स्थिति पर पहुँचने के लिए अंतर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है। उनके विचार में अंतर्ज्ञान प्राप्ति के तीन प्रमुख तरीके हैं –

1. इन्द्रिय अनुभव

2. बाह्यिक अवगति,

3. अंतर्दृष्टि

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार नैतिक जीवन व्यक्तित्व का वह विशेष पक्ष है जो कुछ नियमों, मूल्यों तथा सामाजिक परम्पराओं से संबंधित है तथा जिनका मूल्यांकन तात्कालिक, सांस्कृतिक मापदंड से किया जाता है। परन्तु चरित्र, नैतिक व्यवहार और धार्मिक व्यवहार परस्पर संबंधित होते हुए भी अलग-अलग संकल्पनाएं हैं।

प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक जीवन के प्रति अपना भिन्न दृष्टिकोण होता है और वह अपने दृष्टिकोण से प्रेरित होकर अपने जीवन के पथ पर अग्रसर होता है। अध्यात्म भावना से प्रेरित व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से अपने जीवन को आगे ले जाना चाहता है जबकि भौतिकवादी विचारधारा से प्रभावित व्यक्ति भौतिकता की ओर अपने जीवन को बढ़ाता है। इसी प्रकार सामाजिकता से प्रेरित व्यक्ति सामाजिकता से एवं अपराधों से प्रभावित व्यक्ति उसी दिशा में अग्रसर हाता है। अतीत में भी व्यक्ति का नैतिक जीवन अध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत था। मोक्ष ही जीवन का अंतिम सत्य माना जाता है। अध्यात्म भावना से प्रभावित व्यक्ति विषय वासनाओं को कर्मकाण्ड की तरह लेते थे और उसमें लिप्त नहीं होते थे। परन्तु वर्तमान परिवेश में (आधुनिक युग) जहाँ चारों ओर भौतिकता है वहाँ व्यक्ति भोग लिप्सा में इस तरह फँसा हुआ है कि वह यह नहीं सोच पा रहा कि अपनी आवश्यकताओं से अधिक एकत्र धन को वह मृत्यु पश्चात् अपने साथ नहीं ले जा सकता! ऐसी विषम परिस्थिति में नैतिक जीवन को विवेकपूर्ण दिशा देने हेतु सर्वपल्ली राधाकृष्णन जी ने भौतिकवादिता एवं अध्यात्म के मध्य संतुलन स्थापित करने की दृष्टि से अंतर्ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित की है। उनको दृष्टि से प्राणीमात्र को केवल अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ही नहीं जीना चाहिए अपितु राष्ट्र, समाज एवं सभी के लिए अपने जीवन को आदर्श रूप देना हेतु प्रयासरत रहना होगा। उनका यह भी मानना है कि अपने लिए तो सभी जीते हैं लेकिन मरने के बाद वे ही लोग अपना छोड़ जाते हैं जो परमार्थ (परहित) की भावना रखते हैं।

अतः मानव मात्र को अंतर्ज्ञान के माध्यम से नैतिक मूल्यों के अनुरूप अपने जीवन को ढालना चाहिए जिससे वह एक राष्ट्र का आदर्श नागरिक बन सके।

## 2. अप्प दीपो भव (वक्तृव्य कला) : स्वामी श्रद्धानंद

सारांश –

सन् 1914 में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में स्वामी श्रद्धानंदजी द्वारा दिया गया। ओजस्वी भाषण अपने आप में अद्वितीय एवं अद्भुत था।

गुरुकुल के स्नातकों को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने दीपक के समान जयोतिमय होने का उन्हें निर्देश दिया। अपने संक्षिप्त उद्बोधन में उन्होंने शिष्यों से कहा कि परमात्मा सत्य स्वरूप है, अतः परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करने हेतु मन, कर्म व वचन से उन्हें सत्य को अंगीकार करना पड़ेगा।

अपने शिष्यों से पुत्रवत् स्नेह करने वाले स्वामी श्रद्धानंदजी ने उनसे कहा—

- ❖ धर्म की मर्यादा का उल्लंघन मत करो। तुम्हारा अंतःकरण ही इसका साक्षी है, अतः अपनी अन्तःआत्मा की वाणी को सुनो तथा उसी का अनुसरण करो।
- ❖ स्वाध्याय से कभी पलायन न करो। यह तुम्हें प्रमाद से बचाएगा।
- ❖ ऐसा कोई कार्य न करो जिससे तुम्हें अपनी आत्मा और परमात्मा के सामने लज्जित होना पड़े।
- ❖ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले शिष्यों से उन्होंने कहा— पांचों प्रकार के यज्ञों को करने में कभी आलस्य मत करो।
- ❖ माता, पिता, आचार्य और अतिथि, तुम्हारे देवता हैं। इनकी सेवा करना तुम्हारा धर्म है।
- ❖ इस संसार में कोई भी प्राणी दोषों से रहित नहीं है, अतः अपने आचार्यों के गुणों का अनुकरण करो और अवगुणों की उपेक्षा करो।
- ❖ सच्चे पथ—प्रदर्शक वे ही महापुरुष होते हैं जो संसार में अपना नाम छोड़ जाते हैं। ऐसे महापुरुषों के आदर्शों का अनुगमन करो।
- ❖ जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसे उदारतापूर्वक बांटो। सदा अपने हाथों को खुला रखो।
- ❖ जिस पवित्र भारत भूमि में तुमने जन्म लिया है उसके यश को सर्वत्र फैलाना तुम्हारा धर्म है।
- ❖ जिस सरस्वती की कोख से तुमने दूसरा जन्म लिया है, उसे कभी न भूलना। इसी प्रकार सावित्री माता की उपासना से कभी विमुख न होना।

अपने उद्बोधन का समापन करते हुए संत श्रेष्ठ ने कहा—“ मैं तुमसे गुरु दक्षिणा नहीं मांगता, न ही तुम्हारे राजनैतिक, सामाजिक अथवा मानसिक विचारों को जानना चाहता हूँ। मैं तो मात्र यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे सारे कार्य सत्य पर आश्रित हैं अथवा नहीं।”

उन्होंने अपने शिष्यों को सतर्क करते हुए कहा—“ यह सदैव याद रखों कि सारा संसार सत्य पर ही आश्रित है। सत्य के बिना सब कुछ व्यर्थ है। अतः यदि सत्य तुम्हारे जीवन का अवलम्बन है तो मुझे न कोई चिन्ता है और न ही कुछ मांगना है।”

### 3. बुद्ध की करुणा – डॉ. सद्धा तिस्स

सारांश –

‘बुद्ध की करुणा’ पाठ लोगों को उपदेश देने व उस पर जीवन में अमल करने के लिए रखा गया है, जिसमें बुद्ध द्वारा छोटे-छोटे उपदेशों के माध्यम से स्व पर के दुःख को दूर किया जा सके। समाज में समानता की भावना लाने व सेवा कार्य की ओर व्यक्ति को प्रवृत्त करने का कार्य भी बुद्ध ने किया।

इस पाठ का प्रारम्भ ‘कीसा गौतमी’ की कहानी से होता है। श्रावस्तो नगर के धनाढ्य व्यापारी की पत्नी कीसा गौतमी के पुत्र की अकारण मृत्यु हो जाती है, अपने पुत्र शोक से पीड़ित कीसा गौतमी श्रावस्ती की गलियों में घूमती है। एक बुद्धिमान युवक उसकी दयनीय स्थिति को देखकर कहता है कि तुम्हारे पुत्र को केवल एक ही युवक जीवित कर सकता है – वह है **बुद्ध**। कीसा गौतमी बुद्ध की शरण में जाती है। बुद्ध ने पूरी बात सुनने के पश्चात् कीसा से कहा कि— मुझे तुम किसी ऐसे घर से सरसों का ऐसा दाना लाकर दो जहाँ किसी की मृत्यु नहीं हुई हो, कीसा दर-दर भटकी, किन्तु उसे सरसों का वह दाना प्राप्त नहीं हुआ। कीसा बुद्ध का तात्पर्य समझ गई (जन्म-मृत्यु जीवन के शाश्वत सत्य हैं)।

एक बार जब वे संघ में गए तो बीमार भिक्षु जो दस्त से पीड़ित होकर गंदगी में पड़ा था, उससे पूछा तुम्हारी सेवा कोई अन्य भिक्षु क्यों नहीं कर रहा, उसने कहा – “क्योंकि मैं किसी की सेवा नहीं करता”। स्वयं बुद्ध ने उसे नहलाकर स्वच्छ किया और भिक्षुओं को बुलाकर उनसे अनुरोध किया कि जब कोई व्यक्ति कष्ट से पीड़ित हो और बीमार हो, तो उसकी मदद अवश्य करें। बच्चों को शिक्षा देते हुए उन्होंने मछलियों के उदाहरण, साँप के उदाहरण से समझाया कि हमें किसी को परेशान नहीं करना चाहिए। एक अन्य उपदेश जिसमें एक बार किसान बुद्ध के उपदेश सुनने की तीव्र इच्छा लेकर चला किन्तु उसका बैल खो जाने के कारण वह शाम तक उसे ढूँढ पाया और फिर शाम को भूखा प्यासा वह बुद्ध के प्रवचन सुनने गया। बुद्ध ने पहले उसे भरपेट भोजन करवाया, जिससे अन्य शिष्य रुष्ट हो गए, इस पर बुद्ध ने कहा अगर मैं इस किसान को भूखे पेट ही प्रवचन सुनाता तो वह कुछ भी नहीं समझता। क्योंकि भूख से बढ़कर क्लेश संसार में कोई नहीं है।

इसी तरह अपनी सहज बुद्धि और व्यावहारिकता को कौशल के राजा प्रसनजित की भोजन प्रियता द्वारा भी व्यक्त किया है। राजा प्रसनजित भोजन प्रेमी था तथा भोजनाधिक्य रोग से पीड़ित था। आवश्यकता से अधिक कष्ट और आलस्य रोग को जन्म देता है। अल्प भोजन मनुष्य को धीरे-धीरे बूढ़ा करता है। इस कार्य के लिए राजा की सहायता उनके भतीजे ने की। अधिक भोजन क करने पर वह उसका हाथ खींच लेता, जिससे राजा का वजन भी कम हो गया, वह अधिक फूर्तीला हो गया।

इस तरह अनेक व्यावहारिक व सहज बुद्धि द्वारा वे अपने उपदेशों से जनसामान्य को शिक्षित करते थे।

**UNIT-II**  
**हिन्दी भाषा**

**1. भारत वंदना (काव्य) : सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'**

कवि भारत वंदना के माध्यम से भारतमाता का विजयगान कर रहा है। कवि प्रकृति के अनेक उपादानों से भारतमाता की आगवानी करते हैं। विद्या की देवी माँ सरस्वती के साथ भारत माता की तुलना करके भारत की समृद्ध संस्कृति एवं साहित्यिक परम्परा को भी वे व्यक्त कर रहे हैं, भारत की चहुँ (दसो) दिशाओं से भारतमाता का गुणगान कर रहे हैं। वे भारत माता को सरस्वती क समतुल्य बताते हैं। जिस प्रकार माँ सरस्वती अपने हाथों में कनक, शस्य और कमल धारण किए हुए हैं। उसी प्रकार भारत माँ अपने हाथों में सुख, समृद्धि और प्राकृतिक सौन्दर्य को धारण किए हुए हैं। इस प्रकार कवि सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" ने अपनी कविता में मानवीकरण प्रस्तुत किया है।

कवि कहते हैं भारत माता की जय-जय कार हो। ऐसी भारत माता जो सोने के कमल पर विराजमान हैं। भारत की भौगोलिक स्थिति के आधार पर कविता की रचना की है। भारत माता के चरणों में लंका रूपी सोने का कमल विराजमान है तथा तीनों ओर से समुद्र की पवित्र जलधाराएँ अपनी गर्जना से भारत माता के चरणों का प्रक्षालन कर रही हैं। न केवल भारत माता की जनता बल्कि प्रकृति का रोम-रोम भारत माता का गुणगान कर रहा है।

भारत की हरियाली और खुशहाली को प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं कि प्रकृति में उगने वाले वृक्ष, तिनके, जंगल, लताएँ ऐसे लग रहे हैं मानों भारत माता ने कोई हरी साड़ी पहन रखी हो तथा प्रकृति में खिलने वाले फूल साड़ी में टके सितारे दिखाई दे रहे हैं। भारत के बीचों-बीच में बहने वाली गंगा नदी की पवित्र जलधाराएँ माँ भारती के गले का सुन्दर हार प्रतीत हो रही हो।

भारत-माता के सिर पर हिमालय पर्वत रूपी सुन्दर मुकुट विराजमान है जो बर्फ से ढंका है, सूर्य के प्रकाश की किरणों से चमकता हुआ वह माँ भारती के सिर को सुशोभित कर रहा है। वहीं से प्राणी को झंकझोर देने वाली झंकार की ध्वनि आगे दिशाओं में गूँजकर माँ भारती का गुणगान कर रही है और यह जय-जय कार की ध्वनि आगे दिशाओं में फैल रही है।

**2. पुष्प की अभिलाषा (कविता) – माखनलाल चतुर्वेदी**

माखनलाल चतुर्वेदी जी का जन्म 12 अप्रैल 1898 में म.प्र. के होशंगाबाद जिले के बाबई गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम पंडित नंदलाल चतुर्वेदी और माता का नाम सुंदरबाई था। उनकी प्राथमिक शिक्षा बाबई में ही हुई है। यह कविता हिमकिरीटिनी से ली गई है। इनकी रचनाएँ – **माता, युगचरण, समर्पण, हिमकिरीटिनी, हिमतरंगिनी, साहित्य देवता, कृष्णार्जुन युद्ध** इत्यादि। इन्हें "भारतीय आत्मा" के नाम से भी जाना जाता है। इनकी मृत्यु सन् 1968 में हुई।

**सारांश –**

पुष्प की अभिलाषा कविता में राष्ट्रीय कवि चतुर्वेदी जी ने पुष्प के माध्यम से अपनी राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्त करने का सार्थक प्रयास किया है।

इस कविता में एक छोटा सा पुष्प देश के प्रति समर्पण और असीम प्रेम दर्शाता है। पुष्प कहता है कि –

इस कविता में एक छोटा सा पुष्प देश के प्रति असीम प्रेम एवं समर्पण को प्रकट करता है। पुष्प कहता है कि मुझे किसी सुन्दर युवती के गहनों में भी नहीं गूथना है, मैं यह भी नहीं चाहता कि मुझे प्रेमियों की मालाओं में स्थान मिले। मैं किसी राजा या सम्राट के शव पर चढ़कर भी गौरवान्वित नहीं होना चाहता हूँ न ही मैं ईश्वर के मस्तक पर सुशोभित होकर स्वयं के भाग्य की भी सराहना चाहता हूँ।

बस मैं केवल यही चाहता हूँ कि हे वनमाली! तुम मुझे तोड़कर उस मार्ग (पथ) पर फेंक देना जिस मार्ग से अनेक वीर सिपाही मातृभूमि की रक्षा हेतु अग्रसर होते हो। उस मार्ग पर यदि मैं सिपाहियों के चरणों के नीचे कुचला जाऊँ तो भी मेरा जीवन स्वतः सार्थक हो जाएगा। बस मेरी यही अभिलाषा है।

### 3. अकाल और उसके बाद – नागार्जुन

सारांश –

महामारी की त्रासदी झेलते हुए मनुष्य की दशा अत्यधिक दयनीय हो जाती है जब पेट की आग बुझाने के लिए खाना और प्यास को तृप्त करने के लिए पानी न मिले तो जीवन के प्रति उत्साह में कमी होने लगती है।

लेखक ने अकाल और उसके बाद की स्थिति को सटीक एवं सरल शब्दों में अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि – बहुत दिन हो चुके हैं, चूल्हा बेचारा अपने भाग्य पर रोने लगा है, क्योंकि उसको जलाने की कोई वजह नहीं है। अनाज को पीसने वाली चक्की भी इस इंतजार में उदास बैठी है कि कब उस पर अनाज पीसा जायेगा? बिना भोज्य पदार्थों के चूहों की हालत भी गिरती जा रही है और छिपकलियों की गश्त भी बहुत दिनों तक दीवार पर देखी जा सकती है। अकाल के समय इतनी दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक ने उसके बाद की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि बहुत दिनों बाद जब घर में अन्न के दाने आते हैं और भोजन पकने की तैयारी होती है तो चूल्हे से निकलने वाले धुएँ को देखकर सभी की आँखों में चमक आ जाती है। यहाँ तक कि कौआ भी अपनी आँखें खुजलाता हुआ अपनी खुशी व्यक्त करता है।

### 4. निर्माल्य (ललित निबंध) – विद्यानिवास मिश्र

सारांश – निर्माल्य विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित एक ललित निबंध है। इस निबंध में लेखक ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को बांटते हुए निर्माल्य को **राष्ट्रीय संपदा** कहा है।

लेखक के मित्र उन्हें सदैव निर्माल्य (फूल-पत्र का समूह) देने प्रायः किसी भी समय आ जाते हैं और लेखक भी उसके प्रति अपार और अगाध श्रद्धा रखते हुए उन्हें अपने बिस्तर के सिरहाने रख देते हैं। निर्माल्य में लेखक को उनके मित्र कभी बेला, कभी कमल तो कभी धतुरे के साथ बिल्वपत्र दे जाते हैं जिनमें से बेला उन्हें सबसे अधिक प्रिय इसलिए है क्योंकि उसकी भीनी-भीनी मंत्रमुग्ध करने वाली सुगंध पूरे बिस्तर पर फैल जाती है, उसकी सुरभि का मादक नशे लेखक को सुबह भी प्रायः बेला की क्यारियों तक खींच ले जाता है। लेकिन जब दूसरे दिन ये निर्माल्य के फूल सूखने लगते हैं तो लेखक सोचते हैं इन फूलों का क्या किया जाय? जब वे निर्माल्य को तुलसी के गमले में डालते हैं तो धार्मिक पत्नी यह कहकर रोक देती है कि एक देवता को चढ़ा फूल भला दूसरे देवता को कैसे चढ़ सकता है? लेखक उन फूलों को जमीन पर डालने से इसलिए हिचकते हैं कि कहीं ये किसी पशु-पक्षी का ग्रास न बन जाय? इसलिए अंततोगत्वा इन निर्माल्य रूपी फूलों को नदी में विसर्जन हेतु भेजा जाने लगा। निर्माल्य की सार्थकता पर सोचते हुए लेखक यह अनुभव करते हैं कि देवता का निर्माल्य और प्रसाद दोनों ही एक विशेष गौरवपूर्ण स्थिति हैं, दोनों समादरणीय हैं और दानों की उपेक्षा घोर अपराध है पर दोनों में एक मौलिक अन्तर है। वह यह कि निर्माल्य देवता के श्रीचरणों में चढ़ने की मुहर है और प्रसाद देवता के

श्रीनयनों की कृपा-कोर है। निर्माल्य वह बैरंग डाक है, जो टिकट न लगने के कारण लौट आई हो, जबकि प्रसाद पत्र का अनुकूल उत्तर है।

मैं इसी ज्ञान के अलोक में आगे बढ़ने लगा और देखा कि वे पुराने किस्म के बुर्जुवा निर्माल्य इस नयी भीड़ से कुचले जाने लगे और ये कागजी या सूती निर्माल्य मेरे सिर पर चढ़ने के लिए आतुर दिखने लगे। मैं सिर पर पैर रखकर भागा और मुझे लगा कि जितनी बड़ी भीड़ से आ रही है उससे लाख-गुना बड़ी भीड़ आगे ही तरह मार्ग पाने के लिए पलायन कर रही है। मैंने दो-एक सयाने दिखने वाले इन सहकायियों से पूछा कि भाई! निर्माल्य से इतना उद्वेग क्यों? उन्होंने बतलाया – निर्माल्य तो सिर-आँखों पर, चाहे वह वन-देवता का हो, चाहे गृह-देवता का हो, चाहे ग्राम-देवता का हो, चाहे नगर-देवता का हो या चाहे जन-देवता का हो, पर तुम जानते नहीं, इन निर्माल्य को सिर से छुपाकर ही विसर्जित करने का निमेष है, क्योंकि निर्माल्य **राष्ट्रीय संपदा** है। इन थातियों से संजोकर रखना पड़ता है, नहीं तो देवता का कोप पड़ता है।

मैंने कहा – तब तो मैं इस समास से विग्रह करूँगा और व्यास की शरध गहूँगा कि है 'फुल्लारन्दियात पत्रनेत्र' हम पर नारायण को अगीकार करते हैं, पर हमें उनके निर्माल्य से मुक्ति दो, क्योंकि गर्दन इतनी चौड़ी नहीं है कि इसका भार वहन कर सकें। इतने में मेरी नींद उचट गई और मैं हड़बड़ाकर देखने लगा कि कहीं कोई निर्माल्य तो मेरे सिरहाने नहीं अधिष्ठित है। मुझे यह देखकर सुख हुआ कि सिरहाने सात सौ पृष्ठ की एक मोटी-सी सुछपित पुस्तक है, जिसके नीचे दो-बार बेला के फूल दबे पड़े हैं।

मैंने जैसे-जैसे पन्ने उल्टे, वैसे-वैसे मुझे यह स्पष्ट प्रतिभाषित होता गया कि यह पुस्तक ही मेरी जिज्ञासा का समाधान है। युग बदलते हैं, देवता बदलते हैं, देवता की अर्चन-पद्धति बदलती है और देवता का मान बदलता है, यह सुगत का युग है। इसमें सुगत अर्थात् अच्छी पहुँच वाले की अर्चना का विधान है, क्योंकि सब नाशवान् हैं, सब क्षणिक हैं, सब दुख हैं, पातिमोक्ख केवल सुगत के पास है। इसी से सुगत से कुछ ही कम मान उपगत का है और जिस पर उपगति की मुहर लग चुकी हो, उसी का जन्म सार्थक है, उसी के पुण्य जागृत है और उसी की चर्चा सुमंगत है।

### 5. मानक हिन्दी का स्वरूप (संकलित)

ऐसी भाषा जो पूरे समाज द्वारा मान्य हो, जिसे पूरा समाज स्वीकार करता हो तथा जिस भाषा को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त हो, उसे मानक भाषा कहते हैं। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है। प्रत्येक भारतीय का दायित्व है कि वो हिन्दी के महत्व को समझे, सम्मान करे, हिन्दी बोल व हिन्दी लिखें। भारत में हिन्दी के अनेक रूप प्रचलित हैं, जैसे गुजराती हिंदी, मराठी हिंदी, बुन्देलखंडी हिन्दी आदि। ऐसे में सर्वमान्य यानि मानक हिन्दी की आवश्यकता महसूस हुई जिसका रूप पूरे देश में एक समान हो। मानक भाषा का यह रूप सन् 1948 में रखा गया इसमें शुद्ध शब्दों को रखा गया तथा उसका मानक शब्दकोष तैयार किया गया।

**“भाषा का यही सर्वमान्य, सर्वस्वीकृत और सर्वप्रतिष्ठित रूप मानक हिन्दी है।”**

यही मानक भाषा हमारे देश को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य करती है। शिक्षा, व्यवसाय, प्रौद्योगिकी, माध्यम, प्रशासन, साहित्य, संस्कृति आदि में मानक भाषा का प्रयोग किया जाता है। भारत के संविधान का अनुवाद भी इसी भाषा में उपलब्ध है।

#### मानक भाषा के प्रमुख लक्षण:—

1. मानक भाषा में मानक शब्दों का ही प्रयोग होता है।
2. मानक भाषा प्रायः व्याकरण के नियमों का पालन करती है।
3. मानक भाषा उच्चारण एवं लेखन में अशुद्धि रहित होती है।
4. मानक भाषा उसके व्यवहारकर्ता समाज में 'सर्वमान्य' होती है।
5. औपचारिक अवसरों जैसे संगोष्ठी, उद्घाटन-समापन, सम्मान समारोह आदि में समस्त गणमान्य नागरिक मानक भाषा का प्रयोग करते हैं।
6. शोध, अनुसंधान और शिक्षा में भाषा के मानक रूप का प्रयोग होता है।
7. यह समाज, राज्य अथवा राष्ट्र की अधिकृत भाषा हो सकती है।
8. संचार माध्यम, विधि एवं वैधानिक कार्य, प्रशासन अनुवाद आदि क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है।
9. यह भाषा पूर्ण रूप से शुद्ध होती है।
10. इसमें व्याकरणिक त्रुटियाँ नहीं पायी जाती हैं।
11. इसकी स्वतंत्र लिपि है, जिसे देवनागरी कहा गया है।
12. इसका स्वतंत्र शब्द कोष है जिसमें असंख्य शब्दों को रखा गया है।
13. इसका विपुल साहित्य भंडार है जिसमें उपन्यास, कहानी, कविताएँ, लेख लिखे गए हैं।
14. यह भाषा औपचारिक अवसरों पर प्रयोग में लायी जाती है।
15. इस भाषा का प्रयोग सरकारी कार्यों में किया जाता है।
16. यह देश के नाम संदेश प्रसारित करने में प्रयोग में आती है।
17. इस भाषा का प्रयोग पत्र-पत्रिकाओं में किया जाता है।
18. इस भाषा का प्रयोग अनुसंधान कार्यों में किया जाता है।
19. यह भाषा हमारी पाठ्य पुस्तकों में लिखी जाती है।
20. यह एक जीवन्त भाषा है।
21. यह एक स्वायत्त भाषा है।
22. मानक भाषा का अपना इतिहास है।
23. इसको मानकीकरण की प्रक्रिया द्वारा स्वीकार किया जाता है।

#### मानक भाषा के तत्व

मानक भाषा के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं —

1. **ऐतिहासिकता**— मानक भाषा का अपना इतिहास है, जो खड़ी बोली से प्रारंभ होकर मानक भाषा तक पहुँचा। मानक भाषा अपनी ऐतिहासिक परम्परा का निर्वाह करती है। स्वतंत्रता के समय से लेकर आज वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग तक मानक भाषा अपना रूप स्थापित करती आयी है। शिक्षा, अध्ययन, साहित्य, संस्कृति सभी में अपनी ऐतिहासिक परम्परा को जीवन्त रखा है।



2. **जीवन्तता**— मानक भाषा एक जीवन्त भाषा है। इसे जीवन्त बनाए रखने के लिए इसके विकास को गतिशील रखना जरूरी है। इसमें समय के अनुसार अपने में परिवर्तन करने की क्षमता है। यह भाषा अपनी प्रकृति के अनुकूल अनेक क्षेत्रीय बोलियों एवं भाषा के शब्दों को ग्रहण करती है।
3. **स्वायत्तता**— मानक भाषा एक स्वतंत्र भाषा है। इसका अपना स्वतंत्र शब्दकोष, स्वतंत्र साहित्य है। यह भाषा किसी अन्य भाषा पर आश्रित नहीं है। यद्यपि इसमें अनेक दूसरी भाषा के शब्द शामिल हैं किन्तु यदि उन्हें पृथक कर दिया जाये तब भी इस भाषा का अपना स्वतंत्र स्वरूप है।
4. **मानकीकरण**— मानकीकरण एक प्रक्रिया का नाम है, सामान्य शब्द का मानक बनाने की। जो शब्द जनसामान्य में अधिक प्रयोग किये जाते हैं तथा समाज का अंग बन जाते हैं ऐसे शब्दों को व्याकरण के आधार पर तौल कर मानक शब्दावली में शामिल कर लिया जाता है।
5. **एकरूपता**— मानक भाषा पूरे समाज में उच्चारण, लेखन एवं वर्तनी के स्तर पर एकरूपता लिए हुए है। इनमें अनेक प्रचलित रूपों में से एक रूप ही प्रयोग में लाया जाता है।

### मानक भाषा का महत्व

किसी भी भाषा का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है जिसमें बोलियाँ, उप बोलियाँ आदि निश्चित व्यवहार में लायी जाती है। भाषा पर इन क्षेत्रीय बोलियों का निरंतर प्रभाव पड़ता रहता है। भाषायी परिवेश के आधार पर क्षेत्रीयता का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इसी बात का ध्यान में रखते हुए हमारे भाषा वैज्ञानिकों ने मानक भाषा का एक निश्चित प्रतिमान स्थापित किया है। मानकीकरण की प्रक्रिया को अपनाकर भाषायी बहुरूपता को एकरूपता में लाना इसका कार्य होता है, क्योंकि यह भाषा पूरे देश को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य करती है। उच्चारण, वर्तनी के अर्थ सभी आधार पर भाषा में एकरूपता पायी जाती है।

मानकीकरण एक प्रक्रिया है जो साधारण शब्द को मानक शब्द के रूप में अस्वीकार करती है। मानकीकरण द्वारा भाषा को स्थिर रूप दिया जाता है, किन्तु यह स्थिर रूप जड़ नहीं होता है। इसमें परिवेश, परिस्थितियों एवं प्रकृति के अनुरूप अपने शब्दों में बदलाव की क्षमता होती है। मानकीकरण भाषा की सहज सामाजिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में प्रयोग में लाये जाने वाले या प्रचलित शब्दों में से किसी एक रूप को मान्यता देकर निर्धारित किया जाता है। विकल्प रहित होना भी मानक भाषा की वैज्ञानिकता है किन्तु नए आधुनिक प्रयोगों के कारण यह मानकीकरण की प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है क्योंकि जीवन्त भाषा का मानकीकरण कभी भी पूर्ण नहीं होता है।

मानक भाषा का क्षेत्र व्यापक है। इसकी आवश्यकता अनेक कारणों से पड़ती है।

1. मानक भाषा पूरे देश को एकता के सूत्र में बाँधती है।
2. यह पूरे क्षेत्र की संपर्क भाषा होती है।
3. मानक भाषा से जनसंचार के माध्यमों का लाभ उठाया जा सकता है।
4. मानक भाषा से श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियाँ संभव होती हैं।
5. यह सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बनती है।
6. इससे पूरे देश में प्रशासन सुचारु रूप से चलता है।
7. यह भाषा नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित होती है।
8. इसमें किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं पायी जाती है।

**UNIT-III**  
हिन्दी भाषा

**1. अफसर (व्यंग्य) – श्री शरद जोशी**

**सारांश—**

व्यंग्य, साहित्य की एक प्रमुख विधा है। शरद जोशी इस विधा में सिद्धहस्त है। प्रस्तुत लेख में व्यंग्यकार शरद जोशी ने एक 'अफसर' के चरित्र को कुशलतापूर्वक व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रित किया है।

शरद जोशी के अनुसार अफसर तो अफसर ही होता है। अफसर यह चाहे किसी भी विभाग का क्यों न हो, अफसरी की आदत उससे छूटती वहाँ भी कायम रही है।

अफसर यदि नाव पर सैर करता है, तो भी उसका अन्दाज अफसराना ही होता है। वहाँ पर भी वह किसी ऐसी फाइल का किस्सा छेड़ सकता है, जो मुख्य सचिव के पास अटकी हुई है। लेखक के मतानुसार अफसर के साथ चाँदनी रात में नाव की सैर करने का अर्थ है— स्वयं को मुसीबत में डालना। अफसर से पिण्ड छुड़ाना बहुत मुश्किल होता है, क्योंकि अफसर अमर होता है। यदि वर्माजी रिटायर होते हैं, तो उनकी जगह शर्माजी आ जाते हैं। अफसर ढलकर तैयार होता है या वह जन्म से ही अफसर हो जाता है, यह बहस का विषय है। यह सच है कि कुछ लोग पैदाइशी अफसर होते हैं, अफसरी से रिटायर होने के बाद भी उनमें अफसरत्व कायम रहता है। अफसर अपनी पत्नी को एक न सुलझने वाली 'पेंडिंग फाइल' और बच्चों को 'केस' समझता है। वह घर को भी एक दफ्तर की तरह चलाता है। अफसर तो रिटायर हो जाता है, पर अफसरी बनी रहती है।

पुराने अफसर की विदाई और नये अफसर के आगमन का दृश्य भी बड़ा रोचक होता है। विदाई का भाषण देने वालों के सामने हमेशा यह धर्म-संकट रहता है कि वे किसकी तारीफ करें। नया अफसर पद ग्रहण करते ही अपने तेवर दिखाता है व समय की पाबन्दी पर विशेष जोर देता है। बड़े बाबू सहित तमाम कर्मचारियों की जमकर खिंचाई करता है। दो माह तक सारा काम चुस्त-दुरुस्त चलता है। साढ़े दस यानी साढ़े दस, लेटलतीफी उसे बर्दाश नहीं होती। धीरे-धीरे वह भी ढीला पड़ जाता है, फिर वहीं पुराना ढर्रा चालू हो जाता है। इसी दौरान बड़े बाबू से भी उसके सूत्र जुड़ जाते हैं और ऑफिस की गाड़ी फिर उसी पुरानी चाल से चलने लगती है। फाइल, मीटिंग, दौरा, रिपोर्ट, डीओ, रिमाइण्डर, मेमो व आर्डर की दुनिया में बँधा अफसर वास्तव में सहानुभूति का पात्र है।

लेखक का मत है कि अफसर से दोस्ती नहीं की जा सकती, उससे तो केवल रिश्ता निभाया जाता है। रिश्ते में नियम होते हैं, किन्तु दोस्ती में नियम नहीं होते और अफसर सदा नियम से चलता है। हम अफसर के साथ नहीं चल सकते हैं, हमें सदा उनके पीछे चलना पड़ता है। इस संदर्भ में एक कहावत है कि अफसर के सामने और घोड़े के पीछे नहीं चलना चाहिए।

अफसर अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को व्यक्तिगत रूप से डाँटता है, जबकि नेता, सारे देश को एक साथ डाँटता है। अफसर सब जगह है। वह 'ऑन ड्यूटी' सर्वव्यापी है। वह 'रेडीमेड' मसीहा है, 'एक्टिव' शहीद है व "फुर्तीला" कछुआ है। वह हाथ को बिना आरसी के नहीं देखता और सत्य के प्रमाण माँगता है। वह जीता नहीं, बल्कि जीवन को एक निष्चित तरीके से 'डील' करता है। वह सहज परिभाषित है, फिर भोजिज्ञासा का केन्द्र है। अतः वह जहाँ है, उतना काफी है। उसे वही रहने देना चाहिए।

किन्तु स्मरण रहे, अफसर अगर इस किनारे जा रहा है, तो आप उस किनारे जाइए, क्योंकि इसी में आपकी खैर है।

**“मिट्टी तो देशी है, सिर्फ साँचा विदेशी है”**

शरद जोशी के इस कथन का आशय यह है कि अफसर का जन्म तो देशी परिवेश में होता है किन्तु उसके पालन-पोषण व शिक्षा-दीक्षा में विदेशीपन की झलक मिलती है। उसे रहन-सहन व चाल-ढाल में विदेशी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। अफसर की कार्यशैली भी विदेशी होती है।

“अफसर अगर इस किनारे जा रहा है, तो आप उस किनारे जाइए, इसी में आपकी खैर है” – लेखक के मतानुसार अफसर से दोस्ती नहीं की जा सकती है और न ही उसके साथ चला जा सकता है। अफसर के साथ नहीं चल सकते, हमें उसके पीछे ही चलना पड़ता है। अफसर में पद और प्रतिष्ठा का अभिमान होता है। उसमें अपने अधीनस्थ कर्मचारी को डाँटने-फटकारने की आदत होती है, अतः वह यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता है कि कोई कर्मचारी उसकी बराबरी करे या उसके साथ-साथ चले। इसीलिए लेखक कर्मचारियों को उससे दूरी बनाये रखने की सलाह देता है, ताकि कर्मचारी अनावश्यक विवाद से बच सकें।

## 2. भोलाराम का जीव (व्यंग) : हरिशंकर परसाई

‘भालाराम का जीव’ सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई द्वारा लिखा गया है वर्तमान पशासनिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार को इस व्यंग्य रेखांकित किया गया है। इसमें बताया गया है कि यमलोक में धर्मराज एवं चित्रगुप्त काफी परेशान हैं और आपस में एक गंभीर विषय पर चर्चा कर रहे हैं। चर्चा इस विषय पर हो रही है कि धरती पर एक भोलाराम नाम क व्यक्ति को मरे पाँच दिन हो चुके हैं, लेकिन उसके जीव यानि प्राणों को लेकर अभी तक यमदूत लौटा नहीं है। यहाँ ये दोनों इसलिए भी परेशान हैं कि यमलोक में आज तक ऐसा नहीं हुआ है। इसी बीच एक यमदूत जो कि भोलाराम के जीव प्राण लेने पृथ्वी पर गया था, वह आकर धर्मराज को सूचना देता है कि “दयानिधान! मैं कैसे बतलाऊँ कि क्या हो गया? आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया। पाँच दिन पहले जब जीव ने भोलाराम की देह को त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरम्भ की। नगर के बाहर ज्यों ही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायु-तरंग पर सवार हुआ त्यों ही वह मेरे चंगुल से छूटकर न जाने कहाँ गायब हो गया। इन पाँच दिनों में मैंने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला।”

**धर्मराज क्रोध से बोले—** “मूर्ख! जीवों को लाते-लाते बूढ़ा हो गया, फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया?”

**दूत ने सिर झुकाकर कहा—** “महाराज, मेरी सावधानी में बिल्कुल कसर नहीं थी। मेरे इन अभ्यस्थ हाथों से अच्छे-अच्छे वकील भी नहीं छूट सके। पर इस बार तो कोई इन्द्रजाल ही हो गया।

**चित्रगुप्त ने कहा—** “महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को कुछ चीज भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। हौजरी के पार्सलों के मोजे रेलव अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डब्बे-के-डब्बे रास्ते के कट जाते हैं। एक बात और हो रही है, राजनीतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बन्द कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी ने मरने के बाद दुर्गति के लिए तो नहीं उड़ा लिया?”

इस पर धर्मराज चित्रगुप्त पर भी नाराज होते हैं। तभी कहीं से वहाँ घूमते हुए नारदजी आ जाते हैं। धर्मराज को गुमसुम देखकर जब नारद इसका कारण पूछते हैं, तो वे भोलाराम के जीव के गायब होने वाली पूरी कहानी बता देते हैं। इसके बाद नारदजी चित्रगुप्त से भोलाराम का पृथ्वी पर रहने का उसका पता लेकर उसे खोजने पृथ्वी लोक पर जाते हैं। पृथ्वी पर वे किसी तरह भोलाराम के घर का पता लगाकर उसके परिवार वालों से मिलते हैं। परिवार से मालूम होता है भोलाराम एक सरकारी दफ्तर में काम करता था। यहाँ से वह रिटायर तो हो गया लेकिन असली पेंशन शुरू नहीं हुई। इस कारण वह और उसका परिवार को अत्यन्त गरीबी में गुजर करना पड़ रही थी। घर के गहने व बर्तन आदि सभी बिक चुके हैं। एक साल से मकान किराया भी नहीं दिया। अतः मकान मालिक उन्हें निकालना चाहता है। इन सब बातों की चिन्ता में घुलते-घुलते और भूखे मरते-मरते भोलाराम ने दम तोड़ दिया।

यह सब जानकर नारदजी भोलाराम के परिवार को मदद करने के उद्देश्य से सरकारी दफ्तर जाकर यह ज्ञात करने का प्रयास करते हैं कि आखिर भोलाराम की पेंशन शुरू क्यों नहीं हुई। वहाँ जाकर उन्हें

सरकारी दफ्तरों की रि"वतखोरी व लालफीताशाही वाली बुराई का सामना करना पड़ता है। दफ्तर के बाबू एक से दूसरे के पास पहुँचाकर सभी फाइल पर वजन रखने के नाम पर सीधे-सीधे रि"वत में माँग लेते हैं। नारदजी जब अपनी वीणा देने को तैयार हो जाते हैं, तो बड़े साहब चपरासी को बोलकर भोलाराम की पेंशन की फाइल मँगाते हैं। जिसमें भोलाराम द्वारा लिखी गई ढेर सारी दरखासतें भरी रहती हैं। इस बीच नारदजी व बड़े साहब की आपसी बातचीत में जब नारदजी भोलाराम का नाम जोर से लेते हैं तो फाइल में ये भोलाराम के जीव पाण की आवाज आती है कि मुझे किसने पुकारा। इस पर नारदजी कहते हैं कि मैं नारद हूँ और तुम्हें स्वर्ग ले जाने आया हूँ तो भोलाराम का जीव पुनः कहता है कि मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरखास्तों में ही रहूँगा।

इस प्रकार एक रिटायर सरकारी कर्मचारी की पेंशन न मिलने की स्थिति पर मरने के बाद भी उसकी आत्मा का पेंशन की फाइल में अटका होना तथा सरकारी दफ्तर की भ्रष्ट व्यवस्था पर लेखक ने करारा व्यंग्य किया है।

### **3. भारत का सामासिक व्यक्तित्व (प्रस्तावना) – जवाहरलाल नेहरू**

पं. जवाहरलाल नेहरू जी ने श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रसिद्ध पुस्तक "संस्कृति के चार अध्याय" की प्रस्तावना से इस लेख को लिया है।

संसार भर में जो सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं, उनसे अपने-आप को परिचित कराना संस्कृति हैं। संस्कृति शारीरिक, मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है। संस्कृति वह हैं जिससे संसार के सर्वोत्तम विचार जाने जा सकते हैं या उनके अपने आप को परिचित करना संस्कृति है। संस्कृति मन, आचार अथवा रुचियों की शुद्धि है। भारतीय संस्कृति का मूल आर्यों की संस्कृति के पूर्व मोहन-जोदड़ों तथा द्रविड़ों की सभ्यता तक पहुँचता है। भारतीय संस्कृति पर आर्यों की बहुत गहरी छाप दिखाई देती है। मध्य एशिया से आने वाले उत्तर-पश्चिम से आने वाले तथा समुद्र की राह से आने वाले पश्चिमी लोगों ने भारतीय संस्कृति को बार-बार प्रभावित किया, इस प्रकार राष्ट्र की संस्कृति ने धीरे-धीरे अपना आकार ग्रहण किया। एक तरफ आधुनिक सभ्यता का प्रभाव समन्वय और सामन्जस्य बना रहा था, वहीं दूसरी ओर हमारी सभ्यता को विभाजित भी कर रहा था। संस्कृति का नेतृत्व करने वाले मनीषी भी इस व्यवहारिक समस्या को न समझ सके। हमारी प्राचीन भाषा संस्कृत ने भारत-वासियों को समन्वय का पाठ सिखाया। आर्यों और द्रविड़ों के बीच समन्वय इसी के द्वारा किया गया। यह हमारे धर्म और विचार की प्रतीक बनी। वहीं सांस्कृतिक एकता भी इसी प्रकार साकार हुई। भारतीय समाज में जाति-प्रथा के साथ समाज का एक अलग रूप दिखाई देने लगा। छुआ-छूत, भेद-भाव को लेकर हमारी दृष्टि संकुचित हो गई। भारतवासी अपने ही जातिगत दायरों में घिर गए। एक और हमारी संस्कृति उदार और सहिष्णु बनी, तो दूसरी ओर सामाजिक आचार-व्यवहार और अधिक संकीर्ण होते दिखाई दिए। जीवन की आर्थिक पद्धति की व्याख्या करने में मार्क्सवाद ने सहायता की। मार्क्सवाद ने ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण प्रस्तुत किया। मार्क्सवाद जैसे तो आर्थिक उन्नति जीवन और प्रगति का बुनियादी आधार है। पश्चिम के लोग जब भारत आए तो हमारे देश में एक नई सभ्यता का जन्म हुआ जिसे आधुनिक सभ्यता कहा जा सकता है। इनके आगमन से औद्योगिक क्षेत्र का विकास हुआ। भारतीय विचारों में पश्चिमी सभ्यता का समावेश हुआ जिससे हमारी सोच आधुनिकता की ओर बढ़ने लगी, इसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे बुद्धिजीवी लोग सामान्य जनता से अलग हो गए जिसके कारण पुरानी परम्पराओं की कड़ी टूटने लगी कुछ लोग इन परम्पराओं से जुड़े रहे, किन्तु कुछ आधुनिक विचाराधारियों में समाहित हो गए। प्राचीन व आधुनिकता में तालमेल न होने से इसका खामियाजा जनता को भुगतना पड़ा। नतीजा यह रहा कि न हम पुराने आदर्शों को सम्हाल पाए न नए आदर्शों को सीख पाए। नई पीढ़ी के पास ऐसा कोई मापदण्ड नहीं रहा, जिससे वह अपने विचारों और कर्म को नियंत्रित कर सके। यह स्थिति आज हमारे समक्ष खड़ी है।

#### 4. भारत देश और उसके निवासी (विश्लेषणपरक) – रामधारी सिंह दिनकर

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने बहुत ही सटीक एवं संक्षिप्त रूप से मानव की उत्पत्ति, उसके बन्दर से मानव रूप में परिवर्तन के संबंध में महत्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किए हैं, क्योंकि मनुष्य सबसे पहले कहाँ जन्मा इसे लेकर बहुत विवाद है। कुछ पण्डितों का अनुमान यह भी है कि आदमी शुरू से ही आदमी था और उसकी पैदाइश एक साथ अनेक देशों में हुई। अपितु मान्यता है कि भारत में जो भी लोग मौजूद हैं, उनके पूर्वज इस देश में अन्य देशों से आए और अन्य देशों से आकर ही उन्होंने आपस में मिलकर इस देश में जन समूह की रचना की जिसे हम भारतीय जनता कहते हैं।

#### भारतवर्ष में चार प्रकार के लोग मिलते हैं—

- ✚ एक तरह के लोग वे लोग हैं जिनका कद छोटा, रंग काला, नाक चौड़ी और बाल घुँघराले होते हैं इस जाति के लोग अक्सर जंगलों में बसते हैं।
- ✚ दूसरे तरह के वे लोग हैं जिनका कद छोटा, रंग काला, मस्तक लम्बा, सिर के बाल घने और नाक खड़ी और चौड़ी होती है। विन्ध्याचल के नीचे सरे सारे दक्षिण भारत में इन्हीं लोगों की प्रधानता है। ये द्रविड़ जाति के लोग हैं जिनके पूर्वज, कदाचित् आर्यों से भी पूर्व इस देश में आए थे और उन्होंने पहले-पहले भारत में नगर सभ्यता की नींव डाली थी।
- ✚ तीसरी जाति के लोगों का कद लम्बा, वर्ण गेहूँआ या गोरा, मूँछ-दाढ़ी-घनी, मस्तक लम्बा तथा नाक पतली और नुकीली होती है।
- ✚ चौथे प्रकार के लोग बर्मा, असम, भूटान, नेपाल, उत्तरप्रदेश, उत्तरी बंगाल, कश्मीर के उत्तरी किनारे पर पाये जाते हैं। इनका मस्तक चौड़ा, रंग काला-पीला, आकृति चपटी नाक तथा चौड़ी पसरी होती है। यह मंगोल जाति के लोग हैं।

इस प्रकार अत्यंत प्राचीन काल में आर्य, द्रविड़, आदिवासी और मंगोल इन चार जातियों को लेकर भारतीय जनता की रचना हुई थी।

### 5. पल्लवन / विस्तारण (Expansion of Ideas)

पल्लवन का अर्थ है— फलना फूलना या पनपना। जिस तरह कोई चीज नन्हें पौधे के रूप में विकसित होता हुआ एक वृक्ष का रूप धारण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार एक भाव या विचार को विस्तार देना पल्लवन कहलाता है, अर्थात् किसी सुगठित विचार या भाव का विस्तार पल्लवन है।

#### पल्लवन की सामान्य विधि नियम

पल्लवन एक कला होने के कारण उसमें सावधानियाँ रखना आवश्यक है। पल्लवन करने के सामान्य नियम निम्नलिखित हैं—

1. सर्वप्रथम दिये गये अवतरण के मूल कथन, वाक्य, सुक्ति, लोकोक्ति अथवा कहावत को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए तथा इसमें सन्निहित सम्पूर्ण भाव को अच्छी तरह से समझने का प्रयत्न करना चाहिये।
2. तब मूल विचार अथवा भाव के नीचे निहित सहायक विचारों को समझने की चेष्टा करनी चाहिए।
3. मूल और गौण विचारों को समझ लेने के पश्चात् एक-एक कर सभी निहित विचारों को एक-एक अनुच्छेद में लिखना आरम्भ करना चाहिए।
4. अर्थ अथवा विचार का विस्तार करते समय उसी पुष्टि में यथास्थान अलग से कुछ उदाहरण और प्रमाण भी दिये जा सकते हैं।
5. पल्लवन के लेखन में अप्रासंगिक बातों का अनावश्यक विस्तार या उल्लेख बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए।
6. पल्लवन में मूल तथा गौण भाव या विचार की टीका-टिप्पणी और अलोचना नहीं करना चाहिए। उसमें मूल अवतरण के भावों का ही विस्तार और विश्लेषण होना चाहिए।
7. पल्लवन की रचना सदैव अन्य पुरुष में होनी चाहिए।
8. भाव और भाषा की अभिव्यक्ति में पूरी स्पष्टता, मौलिकता और सरलता होनी चाहिए। वाक्य छोटे-छोटे और भाव अत्यन्त सरल होने चाहिए। इसमें अलंकृत भाषा अपेक्षित नहीं है।
9. पल्लवन में व्यास शैली का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसमें मूल भावों या विचारों को विस्तारपूर्वक लिखा जाना चाहिए।

#### संक्षेपण / सार लेखन (Precis) :-

सार लेखन का आशय है किसी भी विषय वस्तु को संक्षेप में कहने की कला। सार लेखन एक कला है, जो व्यक्ति को निरन्तर प्रयास के बाद प्राप्त होती है। अर्थात् किसी लिखित सामग्री को मूल के लगभग एक-तिहाई भाग में संक्षिप्त में, सहज भाषा और व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना ही संक्षेपण या सार लेखन है।

#### सार लेखन की विशेषताएँ एवं प्रक्रिया—

1. स्वतः पूर्णता
2. संक्षिप्तता
3. भावों में सुसम्बद्धता
4. सहज स्पष्ट भाषा शैली
5. भावों की क्रमबद्धता
6. छोटे व सटीक वाक्य
7. पहले से सुपठित
8. अनावश्यक व असंगत बातों का त्याग
9. प्रत्यक्ष कथन व संवादों को स्वविवेक व आवश्यकतानुसार लिखना

10. अन्य पुरुष का प्रयोग
11. स्वयं की टीका टिप्पणी व आलोचना नहीं
12. स्वयं के भाव व विचारों को नहीं जोड़ना
13. मूल अनुवाद का लगभग एक तिहाई होना
14. निर्धारित शब्द सीमा का पालन
15. विषय समझने हेतु शीर्षक देना
16. संक्षिप्त, सटीक, व सारगर्भित हो
17. महत्वपूर्ण बिन्दु क्रमबद्ध हो ।
18. भाषा अलंकृत, बनावटी अथवा द्विअर्थी न हो ।
19. यथासंभव सामासिक पदों व छोटे वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए ।

Chapter-1

WILLIAM WORDSWORTH : THE SOLITARY REAPER

**The Solitary Reaper**

Behold her, single in the field,  
Yon solitary Highland Lass!  
Reaping and singing by herself;  
Stop here, or gently pass!  
Alone she cuts and binds the grain,  
And sings a melancholy strain;  
O listen! for the Vale profound  
Is overflowing with the sound.  
No Nightingale did ever chaunt  
More welcome notes to weary bands  
Of travellers in some shady haunt,  
Among Arabian sands:  
A voice so thrilling ne'er was heard  
In spring-time from the Cuckoo-bird,  
Breaking the silence of the seas  
Among the farthest Hebrides.  
Will no one tell me what she sings?--  
Perhaps the plaintive numbers flow  
For old, unhappy, far-off things,  
And battles long ago:  
Or is it some more humble lay,  
Familiar matter of to-day?  
Some natural sorrow, loss, or pain,  
That has been, and may be again?  
Whate'er the theme, the Maiden sang  
As if her song could have no ending;  
I saw her singing at her work,  
And o'er the sickle bending;--  
I listened, motionless and still;  
And, as I mounted up the hill,  
The music in my heart I bore,  
Long after it was heard no more.

**A Brief Background**

William Wordsworth is one of the most important English poets and a **founder of the Romantic Movement of English literature**, a style of writing that focuses on **emotion and imagination**. Wordsworth became known as a 'Lakeland Poet' because of the area where he lived, which is renowned for its beautiful, wild landscapes, charming pastures, and countless lakes. He was often called a 'nature poet' because of his emphasis on the connection between humans and the natural world. He became widely successful and was named poet laureate of England in 1843.

'The Solitary Reaper' was written on November 5, 1805 and published in 1807 in the collection *Poems, in Two Volumes*. This poem is unique because, while most of Wordsworth's work is based closely on his own experiences, 'The Solitary Reaper' is based on the experience of someone else: author and friend Thomas Wilkinson, as described in his *Tours to the British Mountains*.

The poem, like most of Wordsworth's poetry, is distinguished by its straightforward use of language and meter as well as its natural theme and imagery. It reflects Wordsworth's belief in the importance of the natural world, the power of memory and the human mind, and his first principle of poetry: that poetry



should be written to provide pleasure through a rhythmic and powerful expression of emotion and leave readers with 'a spontaneous overflow of powerful feelings' long after it is read. Let's take a look at the text of the poem and then discuss what it might mean.

### **Summary**

Wordsworth came across a lovely maiden at work in the fields all alone during his tour of Scotland. Her lovely song and presence in a foreign language of some local dialect had a deep impression and moved the poet to compose these verses. The poem expresses emotion that is aroused by girl's song. This sweet and melodious song is full of romantic passion and appears to maintain his reflective mood till the end. This shows Wordsworth's love for nature and the natural objects. The lovely singer appeared to be a part of beauty of nature representing its sweetness, joy and mystery. Her song captivated the poet's ears as well as the imagination. The poet felt from the tone that the song was melancholy. The song was more charming than the song of nightingale or a cuckoo bird. There was thrill in it although the words did not convey any meaning because the poet did not know the dialect. The poet wished that he might know the contents of the songs to intensify its impact. The poem does not give a definite meaning to the song of the girl. The meaning is as unknown to the reader as it is to the poet as he asks, will no one tell me what she sings? The poet describes feelings of beauty, charm and mystery in the poem. An imagination reader enjoys the same intoxication as was experienced by the poet. However, it seems that Nature impresses the poet not only where he is in direct contact with that but also in moments when he recollects its beauties. The song of the girl leaves no unloosing impression on his mind. He listens to it motionless and heard no more making the poem romantic in nature and a thing of beauty to enjoy forever.

### **Line/Stanza Wise Explanation**

#### **Lines 1-4**

##### **Explanation**

In these lines the poet tells us about a young girl of Scotland. He tells us to look at the girl who is reaping grain and also singing a sweet song. He advises the passerby to stop short and listen to her song or pass very silently by here, so that she is not disturbed.

#### **Lines 5-8**

The poet says that the highland girls cut and bind the grain in sheaves. She is also singing a sad song. She is very busy in her song as well as her work. The poet once again advises to listen to her song. He says that the whole deep valley is echoing with her sweet song. The whole dale is listening to her sweet voice. We should also listen to her song and enjoy it.

#### **Lines 9-12**

In the given lines the poet compares the sweet voice of the girl to that of a nightingale. Nightingale is considered as a sweet-voice bird. The poet says no nightingale has so far sung a melodious song as the girl sings when some group of tired travelers reaches a shady place, in the Arabian deserts the nightingale welcomes the caravan with its sweet song it's obvious that commonly there is no nightingale in the deserts. But if there is some oasis it is but natural that a nightingale is found there. So when a tired caravan reaches any ceases or shrubby area the nightingale welcomes it. The poet says that the voice of the singing girl is rather sweeter than that of a nightingale.

#### **Lines 13-16**

These lines show a comparison between the song of the girl and the song of the cuckoo. He says that such a sweet voice was heard from the cuckoo even in the spring season. The song of cuckoo is always very sweet but the voice of the girl, who was singing, was sweeter than the cuckoo's. The voice of the girl was so sweet that it broke the silence of the seas and of the far off Islands on the north western coast of Scotland. These islands are never disturbed by any storm but the voice of the girl into the silence of this group of Islands. This was because of the praise worthy song of the girl which even affected the seas.

**Lines 17-20**

In these lines the poet tells us about the language of the song. He does not understand the alien language of the song. He says will no one tell him the meaning of the song of the girl. He says that perhaps the girl is singing some sad of the past. He guesses the language and the meaning of the song. Perhaps the girl is singing some unhappy song or singing about events that have taken place in the past perhaps she is singing about battles which have been fought in the far off past.

**Lines 21-24**

These lines are expression of the un understandable language of the song. The poet again guesses at the theme. Perhaps she is singing a simple song on some ordinary matter of the age. Perhaps she is singing simple sorrow of loss or of some misery. May be she is singing for the lower who has lilted her. Probably the incident of loss or pain has taken place and it may be experienced again in future.

**Lines 25-28**

These lines also show that the poet did not know the theme of the song. He says whatever theme she sang irrespective of that it seems that the song of the young girl would not come to an end. The poet says that he saw the girl busy at her work and also singing while reaping with a sickle in bent motion.

**Lines 29-32**

These are the concluding lines of the poem. The poet says that first he listened to her song standing still and motionless. But as he mounted up the hill of Scotland the tune of the song was so sweet that it struck the heart of the poet. He was sop impressed that he carried the melody of the song with him long after the song was ended by the girl. Actually, the poet of nature was profoundly impressed by this natural scene. He remembered this song forties natural melodious effect.

**Chapter-2**  
**A SONG OF KABIR**

**TRANSLATED BY :Rabindranath Tagore**

The poet Kabir, a selection from whose songs is here for the first time offered to English readers, is one of the most interesting personalities in the history of Indian mysticism. Born in or near Benares, of Mohammedan parents, and probably about the year 1440, became in early life a disciple of the celebrated Hindu ascetic Ramananda. Ramananda had brought to Northern India the religious revival which Ramanuja, the great twelfth-century reformer of Brahmanism, had initiated in the South.

Ramananda, through whom its spirit is said to have reached Kabir, appears to have been a man of wide religious culture, and full of missionary enthusiasm. A great religious reformer, the founder of a sect to which nearly a million northern Hindus still belong, it is yet supremely as a mystical poet that Kabir lives for us. His fate has been that of many revealers of Reality. A hater of religious exclusivism, and seeking above all things to initiate men into the liberty of the children of God. His wonderful songs survive, the spontaneous expressions of his vision and his love; and it is by these, not by the didactic teachings associated with his name, that he makes his immortal appeal to the heart. In this poem a wide range of mystical emotion is brought into play with the faithful lovers of all creeds.

Originally written by Siant Kabir and translated into English by Rabindranath Tagore. Kabir gives the message that God is one for all. It is needless to ask a saint what caste he belongs to. Kabir says that the priest warrior and all the thirty six castes are the same for all seek God. The common end of a barber, washer man, carpenter and even Raidas has seek God. Rishi Swapach was tanner by caste. Hindu and Muslims all are alike. They had achieved the end i.e. seeking God. In the eyes of God all are equal and all religions lead to the path of salvation (Moksha).

**Chapter-3**  
**SATYAGRAHA**

By: M.K.Gandhi

**Summary**

"The word Satya (Truth), is derived from Sat, which means being. And nothing is or exists in reality except Truth."

M.K. Gandhi, Young India, July 30 1931

"Truth (Satya) implies love, and firmness (Agraha) engenders and therefore serve as a synonym for force. I thus began to call the Indian movement "Satyagraha", that is to say, the Force which is born of Truth and Love or non-violence, and gave up the use of the phrase "passive resistance".

M.K. Gandhi, Satyagraha in South Africa

The most potent legacy Gandhi left to India was the technique of satyagraha. There was in this instrument of action, power to effect change. "Satyagraha" had become the cry of all those who felt aggrieved, and popular agitations, however organized and whatever their objective, were widely described as "satayagraha movements". Informed, responsible, and concerned Indians today reflect upon the use and meaning of "satyagraha" with misgivings, yet with hope; with fond memories, and yet with anxiety for the future. - - - The name has been seized upon to describe many forms of opposition to government, and to explain almost any direct social or political action short of organized violence.

Mohandas Gandhi's policy of non-violent resistance is called satyagraha. It has been translated as civil disobedience, passive resistance, "truth force", or "The willingness to endure great personal suffering in order to do what's right". The Sanskrit word has been broken down as follows:

1. "Sat" - which implies openness, honesty, and fairness: Truth.
2. "Ahimsa" - refusal to inflict injury on others.
3. "Tapasya" - willingness for self-sacrifice.

Gandhi said:

In the application of Satyagraha, I discovered, in the earliest stages, that pursuit of Truth did not admit of violence being inflicted on one's opponent, but that he must be weaned from error by patience and sympathy. For, what appears to be truth to the one may appear to be error to the other. And patience means self-suffering. So the doctrine came to mean vindication of Truth, not by infliction of suffering on the opponent but one's own self.

Satyagraha and its off-shoots, non-co-operation and civil resistance, are nothing but new names for the law of suffering.

With satya combined with ahimsa, you can bring the world to your feet. Satyagraha in its essence is nothing but the introduction of truth and gentleness in the political, i.e., the national life.

Satyagraha is utter self-effacement, greatest humiliation, greatest patience and brightest faith. It is its own reward.

Satyagraha is a relentless search for truth and a determination to reach truth.

It is a force that works silently and apparently slowly. In reality, there is no force in the world that is so direct or so swift in working.

Satyagraha literally means insistence on truth. This insistence arms the votary with matchless power. This power or force is connoted by the word satyagraha. Satyagraha, to be genuine, may be offered

against parents, against one's wife or one's children, against rulers, against fellow-citizens, even against the whole world.

Such a universal force necessarily makes no distinction between kinsmen and strangers, young and old, man and woman, friend and foe. The force to be so applied can never be physical. There is in it no room for violence. The only force of universal application can, therefore, be that of ahimsa or love. In other words, it is soul-force.

Love does not burn others, it burns itself. Therefore, a satyagrahi, i.e., a civil resister, will joyfully suffer even unto death.

Gandhi repeatedly pointed out the differences between his ideas and the western ideas of passive resistance: I have drawn the distinction between passive resistance as understood and practiced in the West and satyagraha before I had evolved the doctrine of the latter to its full logical and spiritual extent. I often used 'passive resistance' and 'satyagraha' as synonymous terms: but as the doctrine of satyagraha developed, the expression 'passive resistance' ceases even to be synonymous, as passive resistance has admitted of violence as in the case of suffragettes and has been universally acknowledged to be a weapon of the weak. Moreover passive resistance does not necessarily involve complete adherence to truth under every circumstance. Therefore it is different from satyagraha in three essentials: Satyagraha is a weapon of the strong; it admits of no violence under any circumstance whatever; and it ever insists upon truth. I think I have now made the distinction perfectly clear.

Although non-co-operation is one of the main weapons in the armoury of Satyagraha, it should not be forgotten that it is after all only a means to secure the co-operation of the opponent consistently with truth and justice. The essence of non-violent technique is that it seeks to liquidate antagonisms but not the antagonists themselves. Civil disobedience is the inherent right of a citizen. He dare not give it up without ceasing to be a man. Civil disobedience is never followed by anarchy. Criminal disobedience can lead to it. Every state puts down criminal disobedience by force. It perishes if it does not. A Satyagrahi obeys the laws of society intelligently and of his own free will, because he considers it to be his sacred duty to do so. It is only when a person has thus obeyed the laws of society scrupulously that he is in a position to judge as to which particular laws are good and just and which unjust and iniquitous. Only then does the right accrue to him of civil disobedience of certain laws in well-defined circumstances. Fasting is a potent weapon in the Satyagraha armoury. It cannot be taken by everyone. Mere physical capacity to take it is no qualification for it. It is of no use without a living faith in God. It should never be a mechanical effort or a mere imitation. It must come from the depth of one's soul. It is, therefore, always rare. I believe that every man and woman should learn the art of self-defense in this age. This is done through arms in the West. Every adult man is conscripted for army training for a definite period. The training for Satyagraha is meant for all, irrespective of age or sex. The more important part of the training here is mental, not physical. There can be no compulsion in mental training.

---

**Chapter-4**  
**PORTRAIT OF A LADY**

**By: Khushwant Singh**

The story is an insight of Khushwant Singh of his grandmother through his own eyes. Khushwant Singh remembers his grandmother as an everlastingly old person. She was an extremely religious person. He finds it difficult to conceptualise that once she too was young and pretty like other women. The stories about her childhood games were like fairytales to him. She was short, fat and somewhat hunched in stature. Her silvery white hair used to spread out on her wrinkled face.

Khushwant Singh remembers her limping around the house in spotless white clothes with one hand resting on her waist to balance her stoop and the other busy in telling the beads of her rosary. Her lips constantly moved inaudibly in prayers. Perhaps she was not beautiful in a temporal sense but she looked extremely beautiful with the peacefulness, serenity and the contentment her face exhibited.

Khushwant's relationship with his grandmother experienced several switches when he was a small boy. In the first stage Khushwant lived in a village with her as his parents were looking for the chance to settle down in the city. In village grandmother took care of all the needs of the child. She was quite dynamic and active. She woke him up in the morning, got him ready for the school, coated his wooden slate, prepared his breakfast and accompanied him to the school. They fed street dogs with stale chapatis on their way to school which was a great fun for them. She helped him in his lessons also. It was her realm and she was the queen of her realm. In this period she was the exclusive undisputed custodian, mentor and architect of the child Khushwant.

The critical point came in their relationship when they came to city to stay with Khushwant's parents. In city Khushwant joined an English School and started to go to school in a bus. Here the role of his grandmother in his bringing up was cut back a little bit. Now she could not go with him to the school. In spite of her immense interest in his studies, she could not help him in his lessons as he was learning English, laws of gravity, Archimedes' principle and many more such things which she could not understand and this made her distressed. She found herself at loss. Another thing which disquieted her much was that the kids were not learning about God and scriptures in the school instead they were given music lessons which was not a respectable thing in her belief. To her music was not meant for gentlemen. It was intended for beggars and prostitutes only. She highly disdained the music lessons. She was dismayed and withdrew herself to some level. Perhaps she realised that in the reforming of the child her role was finished and this very thought affected her most.

After finishing school Khushwant went to university. He was given a separate room. The common nexus of their friendship was ruptured. His grandmother confined herself to a self imposed reclusiveness. She spent most of her time in reciting prayers and by sitting beside her spinning wheel. She rarely talked to anyone. The only diversion for her was in the afternoon when she relaxed for a while to feed the sparrows. A kind hearted person, in village she used to feed street dogs, here in city she concentrated on birds and they too became very friendly with her. This was the stage when she found herself altogether sequestered and aloof but she weathered this closing off with grace and self-respect.

Khushwant's grandmother was a firm person. Whatever she experienced in her heart she always held back herself from showing her emotions. He recollects that when he went abroad for further studies his grandmother was there to see him off on railway station quite calm busy telling the beads of her rosary and reciting prayers as ever. When he came back after five years he found her more and more religious and more and more self-possessed. She spent even more time in prayers and spinning the wheel. Feeding the birds was her only happy pursuit. But just the day before her death for the first time she broke this routine and abandoned her prayers. That day she sang the songs of the home coming of the warriors on a withered drum along with the ladies of neighborhood in order to celebrate her grandson's return from abroad.

Next morning she became ill. The doctor said it was a mild fever and would disappear she could anticipate that her end was approaching. She was disconcerted that she neglected her prayers just before the final exit from the world. She did not want to waste any more time talking to anybody. She lay peacefully in bed praying and telling the beads till her lips stopped moving and rosary fell from her lifeless fingers.

Thousands of sparrows flew in to mourn her death and sat dispersed around her body in complete silence. They even disregarded the breadcrumbs thrown for them by Khushwant's mother. They only flew away after the corpse was carried away for final ritual